बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 204

आगे की राह

मामल्लपुरम (महाबलीपुरम) में चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अनौपचारिक शिखर बैठक से भारत और चीन के रिश्तों में अहम बदलाव की आशा करना अतिरंजना था। वुहान में सन 2018 में हुई मुलाकात के बाद यह दूसरा अवसर था जब दोनों नेता इस तरह मिले। कश्मीर को लेकर तनाव, यात्रा से ऐन पहले अरुणाचल प्रदेश में सैन्य कवायद, एक बेल्ट-एक रोड पहल और भारत यात्रा के ऐन पहले पाकिस्तान और बाद में नेपाल के नेताओं से चिनफिंग की मुलाकात बताती है कि इस मुलाकात से ऐसा कुछ हासिल नहीं होना था जो दोनों देशों के लिए बहुत अहम हो। परंतु इस दो दिवसीय आयोजन से तीन संकेत निकलते हैं जो बताते हैं कि रिश्तों में संतुलन कायम हो रहा है, आगे की राह नजर आ रही है। पहला संकेत कूटनीतिक है। अगर इस बैठक से कुछ अहम लाभ हासिल करना मुश्किल था तो इस तथ्य पर जोर दिया जाना चाहिए कि विभिन्न मतभेदों को भी बढ़ने नहीं दिया गया। वह भी तब जब महज महीने भर पहले संयुक्त राष्ट्र महासभा में कुछ आक्रामकता नजर आई थी। ऐसा मोटे तौर पर इसलिए हुआ क्योंकि राष्ट्रपति चिनफिंग और प्रधानमंत्री मोदी का आपसी तालमेल बहुत अच्छा है।

मामल्लपुरम से यह संकेत निकला कि वे आपसी रिश्ते को महत्त्व देते हैं। दूसरा आश्वस्त करने वाला संकेत था व्यापारिक रिश्तों पर जोर और आर्थिक और व्यापारिक बातचीत के लिए मंत्रिस्तरीय व्यवस्था का गठन। इस वार्ता का नेतृत्व चीन के उप-प्रधानमंत्री और भारत के वित्त मंत्री करेंगे। इससे दोनों देशों के व्यापारिक असंतुलन को हल करने में मदद मिलेगी। चीन के साथ भारत का वार्षिक व्यापार घाटा 50 अरब डॉलर से अधिक है। बातचीत के जरिये आपसी निवेश और साझा विनिर्माण साझेदारी वाले क्षेत्र चिह्नित किए जाएंगे। चीन ने क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी (आरसीईपी) मुक्त व्यापार समझौते को लेकर भारत की चिंताओं को भी माना है और इससे भी मदद मिली है। भारत के नजरिये से देखें तो चीन आरसीईपी पर हस्ताक्षर की राह में प्रमुख बाधा है। चीन और भारत अब इन चिंताओं पर बातचीत को तैयार हैं जो चीन के सहज रुख को दर्शाता है। तीसरी और शायद सबसे अहम बात यह है कि बैठक में सीमा संबंधी मसलों को लेकर 2005 में तय दो प्रमुख सिद्धांतों को दोहराया गया। भारत की दृष्टि से दोनों अहम हैं। एक, बड़ी भौगोलिक विशिष्टताओं को सीमा का विभाजक मानना और दूसरा बसी हुई आबादी के हितों को ध्यान में रखना (सीमावर्ती कस्बे तवांग के लोगों के लिए अहम)। इससे पहले चीन के नेता इन सिद्धांतों से पीछे हट गए थे। ऐसे में मामल्लपुरम में उनका दोहराया जाना अहम है।

चीन द्वारा बार-बार भारत के पारंपरिक भू-राजनैतिक साझेदार नेपाल को धन और निवेश प्रस्ताव देना, दर्शाता है कि वह दक्षिण एशिया में अपने भू-राजनैतिक दखल के प्रयास कम नहीं करने वाला। न्यूयॉर्क में गत माह जापान, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका और भारत के विदेश मंत्रियों की बैठक (एशिया प्रशांत क्षेत्र में चीन को संतुलित करने के लिए) के साथ रखकर देखें तो यह स्पष्ट है कि इस द्विपक्षीय रिश्ते में दोनों में से कोई देश पीछे हटने को तैयार नहीं है।

भारत के लिए राहत की बात थी कि इस चर्चा में कश्मीर का मुद्दा नहीं उछला। इसके बजाय चिनफिंग ने मोदी को पाकिस्तानी प्रधानमंत्री की 8 अक्टूबर की पेइचिंग यात्रा के बारे में जानकारी दी। परंतु सबसे अहम बात यह है कि वुहान में हुई पिछली मुलाकात की तरह मामल्लपुरम में हुई अनौपचारिक मुलाकात ने एक बार फिर संवाद और संचार की महत्ता को रेखांकित किया है। मोदी ने अगले वर्ष तीसरी बैठक के चिनफिंग के न्योते को स्वीकार कर लिया है। उस लिहाज से देखें तो मामल्लपुरम ने दोनों देशों के रिश्ते को आगे बढ़ाने का काम किया है।

बिनय सिन्हा

वापस लौट रहा स्वदेशी अर्थव्यवस्था का जिन्न!

संघ प्रमुख मोहन भागवत ने आरएसएस का जो आर्थिक दर्शन सामने रखा है वह मोदी सरकार की मौजूदा नीतियों और कदमों से एकदम उलट है। ऐसा चल नहीं सकता

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के प्रमुख जिन्हें सरसंघचालक कहकर पुकारा जाता है, वह दशहरे के दिन नागपुर स्थित आरएसएस मुख्यालय पर जो भाषण देते हैं उसे राष्ट्र के नाम संबोधन के समान माना जाता है। यह संबोधन हमेशा सुर्खियां बटोरता है लेकिन अब जबकि भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) दूसरी बार सत्ता में है और पहले से ज्यादा बहुमत से सत्ता में है तो इसकी अहमियत भी बढ़ गई है। इतना ही नहीं सरकार ऐसे सभी कदम उठा रही है जिन्हें आरएसएस की मूल चिंताओं में शामिल किया जाता है: कश्मीर में अनुच्छेद 370 समाप्त करना, समान आचार संहिता और अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण।

करीब एक दशक से आरएसएस के मुखिया मोहन भागवत इस वर्ष ज्यादा खबरों में रहे क्योंकि उन्होंने लिंचिंग के अलावा हिंदू और भारतीय को परिभाषित करते हुए कहा कि दोनों एक ही हैं। दोनों मुद्दों पर उनकी दलीलें विवादास्पद थीं जिन्होंने खूब ध्यान खींचा। उनकी आलोचना भी हुई और उनको मानने वालों ने सराहना भी की। इस प्रक्रिया में एक अहम मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया गया जबकि उन्होंने उस पर विस्तार से चर्चा की थी। हम उसका विश्लेषण करेंगे।

अगर आप उनके 63 मिनट के भाषण के कुछ हिस्से दोबारा सुनें तो उपयोगी होगा। मसलन पहला मिनट और उसके बाद 28वें मिनट से 42वें मिनट तक। इस दौरान वह अपने आर्थिक दर्शन का जिक्र कर रहे हैं। असल बात चंद शुरुआती सेकंड में निहित है। वह इसकी शुरुआत देश की दो महान विभूतियों गुरुनानक देव (550वीं वर्षगांठ) और महात्मा गांधी (150वीं वर्षगांठ) से करते हैं। मुझे नहीं लगता कि आरएसएस-भाजपा के दायरे के बाहर या भारतीय राजनीति पर गहरी पकड़ रखने वाले किसी व्यक्ति को दत्तोपंत ठेंगड़ी के बारे में कोई गहन जानकारी होगी। भागवत ने जिक्र किया कि उनका शताब्दी वर्ष 10 नवंबर को आरंभ हो रहा है।

सच तो यह है कि कोई भी, यहां तक कि आरएसएस भी उन्हें गुरुनानक या गांधी की श्रेणी में नहीं रखेगा। परंतु वह इतने महत्त्वपूर्ण तो थे कि उपरोक्त दोनों के साथ उनका जिक्र किया गया। जब आप उनके भाषण के दूसरे हिस्से के 14 मिनट सुनेंगे तो आपको पता चलेगा कि यह कोई चलताऊ उल्लेख नहीं था।

ठेंगड़ी सन 1920 में वर्धा में जन्मे जो नागपुर से ज्यादा दूर नहीं है। ठेंगड़ी आजादी के बाद के आरएसएस के आधुनिक संस्थापकों में से एक थे। उन्होंने आरएसएस के राजनैतिक अवदानों भाजपा और जनसंघ के लिए वैचारिक जमीन तैयार की। अर्थशास्त्र उनकी रुचि का विषय था। उनके विचारों ने आरएसएस की आर्थिक विश्वदृष्टि तैयार करने में मदद की। खासतौर पर गत 30 वर्षों में या कहें जब भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था का उदारीकरण शुरू किया।

ठेंगड़ी अटल बिहारी वाजपेयी के साथी थे और दोनों ने सन 1955 में भोपाल में आरएसएस की श्रमिक शाखा भारतीय मजदूर संघ (बीएमएस) की स्थापना की थी। वाजपेयी सरकार के छह वर्ष के दौरान दोनों आपस में बुरी तरह लड़ते रहे। ठेंगड़ी वाजपेयी सरकार के तमाम आर्थिक निर्णयों का विरोध करते रहे। खासतौर पर सरकारी कंपनियों के निजीकरण, आयात शुल्क में कमी और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ाने के निर्णयों का। उन्होंने तो उस वक्त बतौर वित्त मंत्री सुधारों को बढ़ावा दे रहे यशवंत सिन्हा की बलि तक मांगी थी। वाजपेयी ने एक वर्ष तक प्रतिरोध करने के बाद समर्पण कर दिया था। ठेंगड़ी को संगठन के भीतर वास्तविक शक्ति हासिल थी। जब सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि किसी सरकारी कंपनी को बेचने के पहले संसद की मंजूरी आवश्यक है तो शौरी की राह रुक गई थी। ठेंगड़ी ने इसकी खुशी मनाई थी। आज के संदर्भ में यह याद रखना होगा कि ऐसा तब हुआ था जब वाजपेयी सरकार ने दो बड़ी तेल विपणन कंपनियों हिंदुस्तान पेट्रोलियम और भारत पेट्रोलियम को बेचने का निर्णय कर लिया था।

ठेंगड़ी ऐसा कहने वाले अकेले व्यक्ति नहीं थे।

बीएमएस ने भी वाजपेयी के सुधारों का विरोध किया था। यह विरोध वाम संगठनों और कांग्रेस से जुड़े संगठन इंटक से भी अधिक तीव्र था। इस बीच उन्होंने दो और दबाव समूहों का गठन किया: सन 1979 में भारतीय किसान संघ और सन 1991 में स्वदेशी जागरण मंच। सन 1991 में ही नरसिंह राव और मनमोहन सिंह ने सुधारों की शुरुआत की थी। स्वदेशी जागरण मंच ने देश भर में वैश्वीकरण का भरपूर विरोध किया। के एन गोविंदाचार्य जो भाजपा में आरएसएस के आदमी थे, ने बतौर भाजपा महासचिव इसकी पुरजोर मुखालफत की।

वाजपेयी के कार्यकाल के समापन तक दोनों के रिश्ते बेहद खराब हो गए थे। जब भी कोई नया विचार सामने आता तो वाजपेयी बनावटी हंसी के साथ कहते, अरे भाई ठेंगड़ी जी को कौन संभालेगा? परंतु इस लड़ाई के बावजूद वाजपेयी ने बीटी कॉटन को मंजूरी दी। जबकि मनमोहन सिंह और मोदी के कुल 16 साल के कार्यकाल में एक भी नए बीज को मंजूरी नहीं मिली। 2004 में इस लड़ाई का अंत हो गया। मई 2004 में वाजपेयी की सत्ता चली गई और उसी वर्ष 14 अक्टूबर को ठेंगड़ी गुजर गए। उन्हें इस बात की संतुष्टि रही होगी कि वाम नियंत्रण वाली नई संप्रग सरकार ने निजीकरण को त्यागकर कल्याण योजनाओं का ऐसा सिलसिला शुरू किया जैसा शायद वे चाहते। अब जबकि हम ठेंगड़ी के बारे में अधिक जानते हैं, वही ठेंगड़ी जिन्हें सरसंघचालक ने गुरुनानक और महात्मा गांधी के साथ रखा, तो अर्थव्यवस्था पर दिए 14 मिनट को बेहतर समझ सकते हैं।

सार-संक्षेप:

आर्थिक संकट मौजूद है लेकिन इसे बहुत अधिक तवज्जो देने की आवश्यकता नहीं है। जीडीपी वृद्धि को मापने का इकलौता मानक नहीं है। भ्रष्टाचार के खिलाफ कदम उठाइए लेकिन मासूमों को परेशान मत कीजिए। हमें स्वदेशी की अवधारणा पर यकीन है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम खुद को अलग-थलग कर लें। व्यापार वैश्विक है लेकिन हमें वही चीजें खरीदनी चाहिए जो हम नहीं बना सकते और हमें उसकी जरूरत है। भारतीय और ब्राजीली गोवंश की संकर नस्ल के आयातित वीर्य का प्रयोग क्यों? स्वदेशी का इस्तेमाल हो। आगे वह निर्यात की अच्छाई और आयात की बुराई की बात करते हैं। आरएसएस की सादगी का मंत्र कहता है कि केवल जरूरी चीजें खरीदें और अपनी बनाई चीजों को संरक्षण दें।

यह शब्दश: अनुवाद नहीं है बल्कि मेरी ओर से ईमानदारीपूर्वक की गई व्याख्या है। इसके बाद वह एफडीआई पर कहते हैं कि विदेशी यहां निवेश कर सकते हैं लेकिन हमें उन देशों से सीखना चाहिए जो घरेलू बोर्ड सदस्यों को वीटो अधिकार देते हैं। यानी हिस्सेदारी विदेशियों के पास रहे और शक्ति सरकार के पास। दूसरी ओर क्या हो रहा है? हमारी नई कंपनियां भारतीयों के स्वामित्व वाली दिख रही हैं लेकिन गहराई से देखें तो उनमें चीन की हिस्सेदारी है। इसे चिरपरिचित ठेंगड़ोनॉमिक्स कहा जा सकता है।

मोदी सरकार 2008 के बाद सबसे गहन आर्थिक मंदी से जूझ रही है और इस बीच उसने जो कदम उठाए या वादे किए वे भी उसके उलट ही ठहरते हैं। यह नए क्षेत्रों को एफडीआई के लिए खोल रही है, नए व्यापार समझौते कर रही है, खासतौर पर अमेरिका के साथ तथा क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी को अंजाम देने में लगी है। इसने बड़े पैमाने पर निजीकरण की घोषणा भी की है।

मोदी सरकार ने हर मोर्चे पर विपरीत कदम उठाया है। मोदी सरकार ने जिस सबसे बड़ी सरकारी कंपनी को बिक्री के लिए सामने किया है यह वही बीपीसीएल है जिसे बेचना वाजपेयी ने 2003 में टाल दिया था। मोदी ने इस विषय पर अचानक सोचा हो ऐसा भी नहीं है। मोदी ने सन 2016 में जिन 187 पुरातन कानूनों को समाप्त किया था उनमें 1976 में इंदिरा गांधी द्वारा पारित वह कानून भी था जिसके जरिये बहुराष्ट्रीय कंपनी बर्मा शेल का राष्ट्रीयकरण कर उसे बीपीसीएल नाम दिया गया।

हम कह नहीं सकते कि स्वदेशी अर्थशास्त्र का इतने विस्तार से जिक्र कर भागवत एक बार फिर विरोध का इरादा दिखा रहे हैं या नहीं। वाजपेयी और मौजूदा प्रधानमंत्री की ताकत में अंतर को देखकर ऐसा लगता नहीं लेकिन यह असंभव भी नहीं। हम बस यही आशा करते हैं कि अभी ऐसी विचारधारा का सामने आना बाकी है जो मानती हो कि देश की अर्थव्यवस्था जिस गर्त में गिरी है उसे वहां से निकालने के लिए और गहरी खुदाई की आवश्यकता है।

देश में राज्य क्यों नहीं लगा सकते आयकर?

सम सामयिक

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

आदर्श स्थिति में देखा जाए तो आयकर की दर यथा संभव शून्य के करीब होनी चाहिए क्योंकि यह एक राजनीतिक कर है जिसकी कोई आर्थिक महत्ता नहीं है। परंतु ऐसा होने वाला नहीं है। बहरहाल, कुछ और है जो किया जा सकता है।

गत माह मैंने अपने आलेख में कहा था कि मैं एक बड़े सुधार का सुझाव दूंगा। जरा इस पर विचार कीजिए: देश में आयकर केवल केंद्र सरकार क्यों लगाती है जबकि कई अन्य देशों में राज्य भी यह कर लगाते हैं?

क्या कोई ऐसी बात है जो भारतीय गणराज्य को विशिष्ट बनाती हो? क्या सन 1950 के दशक के राजनीतिक हालात अभी भी बरकरार हैं? जब तमाम अन्य कमतर चीजें संविधान की अनुवर्ती सूची में शामिल हैं तो फिर यह उसमें क्यों नहीं है? संविधान ने हरसंभव तरीके से राज्यों को सशक्त बनाया लेकिन इस क्षेत्र में?

मेरा मानना है कि अब इस पर बहस करने का वक्त आ चुका है। अगर कोई व्यक्ति इस बहस को शुरू कर सकता है तो वह हैं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी। आखिरकार, केंद्र सरकार से सबसे अधिक प्रताड़ित होने वाले मुख्यमंत्री वही रहे हैं। संभवत: उनके द्वारा योजना आयोग को भंग करने की वजह भी यही रही।

इतना ही नहीं, सोच के रूढ़िवादी तौर तरीकों को तोड़ने वालों में भी वह अव्वल हैं। इस क्षेत्र में अतीत में उनका प्रदर्शन बेहद अच्छा रहा है। खासतौर पर जब इससे तात्कालिक राजनीतिक लाभ होते हों।

इतना ही नहीं, अब तो उनके पास संसद की शक्ति भी है जिसकी सहायता से वह संविधान संशोधन कर सकते हैं। कोई राज्य इस बात पर आपत्ति भी नहीं कर सकता। तब राज्य भी केंद्र को लेकर शिकायत करना बंद कर सकते हैं और अपनी आर्थिक तकदीर खुद लिख सकते हैं। इससे राज्यों को जबरदस्त शक्ति मिलेगी।

मुझे बस एक ही आशंका है कि राज्यों का आयकर 10 फीसदी से अधिक नहीं होना चाहिए और केंद्र का आयकर 30 फीसदी से ऊपर नहीं जाना चाहिए। तमाम उपकर और अधिभार समाप्त कर दिए जाने चाहिए। बीते तकरीबन 800 वर्षों से देश की 'सामान्य' कर दर 40 से 55 फीसदी रही है। यह आय का वह हिस्सा है जो सरकार वैध तरीके से नागरिकों से लेती है। परंतु ज्यादातर वक्त यह दर 45 से 50 फीसदी के दरमियान रही है।

कर 'संग्रह' की इस दर के कारण ही ज्यादातर वक्त भारत आर्थिक रूप से कमजोर बना रहा। इसे कम किया जाना चाहिए। केवल सरकारों को ही व्यय करने के लिए पैसा नहीं चाहिए। नागरिकों को भी धन की आवश्यकता होती है।

अप्रचलित व्यवस्था

शुरुआत में राज्य आयकर को वैकल्पिक रखा जा सकता है। जो राज्य इसे चुनेंगे उन्हें राज्य से मिलने वाला हिस्सा गंवाना होगा। जबकि जो राज्य ऐसा नहीं चाहते, उनके लिए पुरानी व्यवस्था तब तक लागू रहे जब तक वे नई व्यवस्था को अपना नहीं लेते।

अगर मजबूत राजनीतिक कारण हों तो आर्थिक वजहें और भी शक्तिशाली हो जाती हैं। अब जरा हालात पर नजर डालिए। हालिया वित्त आयोग ने राज्यों की हिस्सेदारी को 10 फीसदी बढ़ाकर 42 फीसदी कर दिया। यानी कुल कर राजस्व का 42 फीसदी हिस्सा राज्यों को जाएगा।

परंतु ऐसा करके ज्यादा राजस्व नहीं जुटाया जा सकता क्योंकि अगर ऐसा होता तो केंद्र अपने कर्मचारियों का वेतन चुकाने के लिए इतनी जद्दोजहद नहीं कर रहा होता। अब ऐसा लग रहा है कि केंद्र 33 फीसदी पर वापस जाना चाहता है। (इसके परिणामस्वरूप यह आयोग के समक्ष याचक की भूमिका में है जो कि बिल्कुल अच्छी बात नहीं है)।

चाहे जो भी हो, कोई नहीं कह सकता कि उचित प्रतिशत क्या होगा-30, 35, 38 या 42? राजकोषीय घाटे के तीन फीसदी के वांछित स्तर की तरह यह भी एक मनमर्जी से तय किया गया आंकड़ा है। और तमाम मनमानी चीजों की तरह यह भी बेतुका है। यह सही है कि ऐसा आधा अधूरा रुख ही बीती चौथाई सदी के दौरान वित्तीय अंतरण के स्तर के साथ बार-बार छेड़छाड़ का कारण है।

बीते चार वित्त आयोगों ने जिस तरह की तोड़-मरोड़ की है उसकी निरर्थकता को देखकर आप स्तब्ध रह जाएंगे।

ऐसे में मेरा सीधा सुझाव है कि राज्यों को यह तय करने दिया जाए कि उन्हें कितनी आवश्यकता है और वे कितना राजस्व जुटा सकते हैं। मैं शर्त लगाने को तैयार हूं कि राज्य यथाशीघ्र कृषि से होने वाली आय पर कर लगा देंगे।

आपत्तियां

राज्यों के आय कर लगाने पर दो प्रमुख आपत्तियां हैं। एक का संबंध गरीब राज्यों से तो दूसरे का प्रशासनिक क्षमताओं से है।

गरीब राज्यों का मुद्दा उन राज्यों के प्रति केंद्र की जवाबदेही से संबंधित है जो अपने लिए राशि नहीं जुटा सकते। प्रशासनिक क्षमता संबंधी दलील का संबंध राज्यों की कर संग्रह की क्षमता से है फिर चाहे वे कमजोर हों या मजबूत।

दोनों दलीलें मजबूत हैं लेकिन इसी के चलते हमें बहस को नए सिरे से शुरू करने की जरूरत है क्योंकि अगर इस दलील को स्वीकार किया जाता तो शायद हम कभी अंतरिक्ष कार्यक्रम या नाभिकीय कार्यक्रम शुरू नहीं कर पाते। पहले लक्ष्य तय करना होता है और उसके पश्चात क्षमता निर्माण करना होता है।

ऐसे में हमारे समक्ष केवल एक ही बड़ी आर्थिक आपत्ति रह जाती है: वह यह कि आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों का प्रदर्शन कैसा रहेगा? यही एक समस्या है जिसे हल करना आवश्यक है। बाकी तमाम बातें ऐसी हैं जिन पर बहस की जा सकती है।

कानाफूसी

नीतीश बनाम प्रसाद

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की गठबंधन साझेदार भारतीय जनता पार्टी में शामिल उनके आलोचकों का कहना है कि राजधानी पटना में हाल ही में आई बाढ़ के दौरान राज्य सरकार ने स्थानीय निवासियों के बचाव के लिए कोई खास प्रयास नहीं किए और बचाव कार्य तब शुरू हुए जब पटना साहिब के सांसद और केंद्रीय कानून मंत्री 29 अक्टूबर की रात को पटना पहुंचे। उनके मुताबिक प्रसाद ने कई उच्चस्तरीय बैठकें रद्द कीं और केंद्रीय कोयला मंत्री प्रह्लाद जोशी से बात कर छत्तीसगढ़ से कई ऐसे पंप मंगवाए जो कोयला खदानों में से पानी निकालने के काम में लाए जाते हैं। उनका कहना है कि साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड लिमिटेड से इस काम के लिए आए 18 कर्मचारियों को होटलों में रुकना पड़ा क्योंकि राज्य सरकार उनके रहने की समुचित व्यवस्था कर पाने में नाकाम रही। प्रसाद ने केंद्रीय जल मंत्री गजेंद्र शेखावत से बात करके फरक्का बांध के सभी गेट खुलवाने की व्यवस्था की ताकि क्षेत्र में जल स्तर कम हो सके। इसके बाद उन्होंने रक्षा सचिव से बात कर दो हेलीकॉप्टर का इंतजाम किया ताकि राहत सामग्री बांटी जा सके। इन सारी बातों का एक ही मकसद था, नीतीश कुमार को नीचा दिखाना।

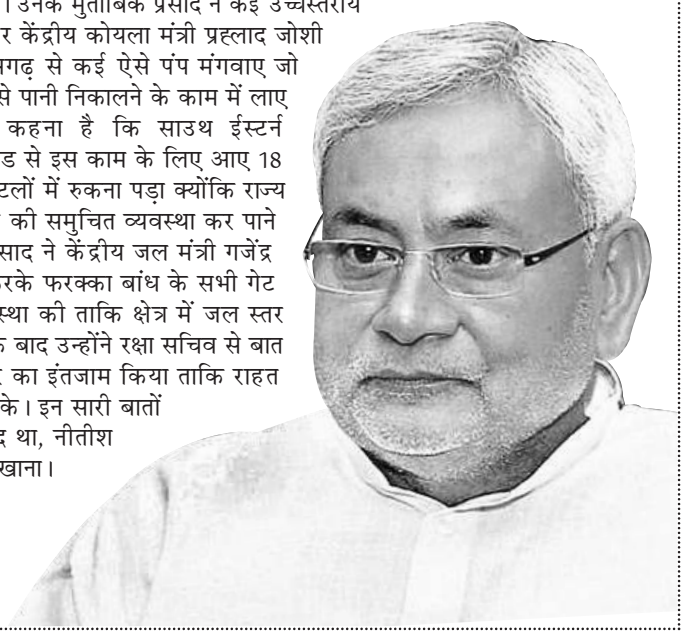

आपका पक्ष

बेहतर हों प्रतिस्पर्धा सूचकांक के आंकड़े

हाल में जारी वैश्विक प्रतिस्पर्धा सूचकांक में भारत 10 स्थान फिसलकर 68वें स्थान पर आ गया है। कुछ मानदंडों को छोड़कर अधिकांश में देश की रैंकिंग में गिरावट आई है। स्वास्थ्य, कुशलता, श्रम बाजार, बुनियादी ढांचा जैसे महत्त्वपूर्ण मानदंडों में देश की रैंकिंग में सुधार के बदले गिरावट आई है। रिपोर्ट के अनुसार सिंगापुर इस सूचकांक में अमेरिका को पछाड़ कर पहले पायदान पर पहुंच गया है। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति उस देश की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य, कुशलता, बुनियादी ढांचे पर निर्भर होती है। लेकिन वैश्विक मानदंड के हिसाब से देश इन क्षेत्रों में असंतोषजनक पायदान पर है क्योंकि शिक्षा में जीडीपी का तीन प्रतिशत से भी कम खर्च किया जाता है जबकि सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्र में जीडीपी का मात्र 1.15 प्रतिशत खर्च किया जाता है। सरकार कौशल भारत योजना, आयुष्मान योजना, सर्व शिक्षा अभियान एवं विविध योजनाओं के माध्यम से इन क्षेत्र में सुधार लाने कर प्रयास करती है लेकिन क्रियान्वयन के अभाव से निश्चित लक्ष्य हासिल करने में असफल रही है। सरकार ने सामाजिक एवं आर्थिक समानता प्रस्थापित करने के लिए देश की अर्थव्यवस्था को पांच खरब डॉलर तक बनाने का लक्ष्य रखा है। लेकिन इसके लिए शिक्षित, कुशल, स्वास्थ्य, श्रमिक, विकसित बुनियादी ढांचे, श्रम बाजार के नियमन की आवश्यकता है। तभी देश की अर्थव्यवस्था पांच खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बन सकती है। सरकार को इस रिपोर्ट के आंकड़ों को गंभीरता से लेकर कमियों को दूर करके सुधवारवादी कदम उठाने चाहिए।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

वैश्विक प्रतिस्पर्धा सूचकांक 2019 में भारत 10 पायदान फिसलकर 68वें स्थान पर रहा

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

जलवायु परिवर्तन, हरित ग्रह प्रभाव, वैश्विक तापमान में वृद्धि तथा प्राकृतिक आपदाओं की बारंबारता ने विश्व के लोगों को सोचने पर मजबूर कर दिया है कि पर्यावरण संरक्षण पर समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो विनाश से नहीं बचा जा सकता है। मानव ने विकास के नाम पर पर्यावरण का अत्यधिक दोहन किया और अभी भी कर रहा है। इसका नतीजा है कि प्रकृति ने भी अपना विकराल रूप दिखाना शुरू कर दिया है। वैश्विक सम्मेलनों में अधिकांश देशों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति इस बात पर केंद्रित है कि यह एक देश की समस्या नहीं है। उदाहरण के लिए पेरिस सम्मेलन, 2015 इस दिशा में उल्लेखनीय है। लेकिन अमेरिका का इससे अलग हो जाना गंभीर सवाल खड़े करता है। चीन का अपने कार्बन उत्सर्जन को सही ठहराना हो, रूस का जलवायु-परिवर्तन को स्वीकार करने की बात करना हो या इंटरनैशनल व्हेल कमीशन से जापान का बाहर होना यह सब पूरी मानव जाति के अस्तित्व को संकट में डाल रहा है। इसी प्रकार, चाहे अमेजन के जंगलों में लगी आग जैसा वैश्विक मुद्दा हो या आरे कॉलोनी में पेड़ों की कटाई जैसा स्थानीय मुद्दा, सब अलग-थलग दिखाई पड़ते हैं। हमें समझना होगा कि हमारा छोटा या बड़ा कोई भी कदम प्रकृति को किसी भी तरह का नुकसान न पहुंचाए। प्रकृति ने हमें विशाल प्राकृतिक संसाधनों से नवाजा है। समुचित उपयोग के साथ इनकी पुनर्स्थापना करना अत्यंत आवश्यक है।

जितेंद्र साहू, शहडोल

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।